शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
Volume - 01 Issue – 02 April– June -2023

दलितों के सामने उच्च शिक्षित दलित कुछ भी नहीं है, यह अपमान दलितों में फोड़ा बन जाता है। जिसमें मवाद भर जाता है। फोड़े से मवाद को निकाले बगैर दलितों को राहत नहीं मिलती है। नागफनी में फोड़ा फूटता है मवाद बाहर निकलती है दलितों को राहत मिलती है। नागफनी की यही विशिष्ठता है। इसी कारण नागफनी में एक चुंबकीय आकर्षण है। नागफनी द्वारा दलित समाज में चेतना पैदा होती है।

दलित साहित्य के सौंदर्य को लेकर भी बहुत विवाद आलोचकों में छिड़ा है। इस आलोचना का जवाब भी सोनकर जी ने नागफनी लिखकर दे दिया है। सोनकर द्वारा प्रयुक्त भाषा,प्रतीक, बिंब, उपमाएँ अपने आप में बेजोड़ हैं। दलित साहित्य के सौंदर्य शास्त्र के मिथ को भी यह आत्मकथा तोड़ती है। सुअर दान उपन्यास का युद्ध वास्तव में प्रतीक बनकर आय है। यह प्रतीक कमजोर और ताकतवर के बीच नजर आता है। **जानवरों** के युद्ध के माध्यम से लेखक ने व्यक्तियों के युद्ध को उजागर किया है। सदियों से जिस छल,फरेब का सहारा ताकतवर अपनाते रहे हैं वहीं छल फरेब जानवरों के युद्ध में भी दिखायी देता है। प्रतीकात्मकता अनूठी है जिसे गढ़ने में उन्हें सफलता हासिल हुई है। काली रात बीत चुकी थी। चिड़िया चहचहाने लगी थी। असमान में लालिमा छायी हुई थी। सूरज उग रहा था।"[134] जैसी भाषा प्रयुक्त करके लेखक ने दलितों में आयी चेतना को बखूबी प्रकट किया है। ऐस काव्यात्मक भाषा का प्रयोग नागफनी में कई स्थलों पर हुआ है। तमाम ऐसे कहावतें दलित साहित्य में प्रयुक्त होती रही है। इसका जवाब भी सोनकर जी ने नागफनी में दिया है। यह लेखक की भाषा का ही कमाल है कि वे चुभती बात भी संयमित ढंग से करते हैं।

नागफनी शीर्षक भी प्रतीकात्मकता लिये हुए हैं। नागफनी का काँटे नुकीले होते हैं इन काँटों की विशेषता होती है कि ये कभी भी सूखते नहीं है। शरीर में लगने पर भी हरे रहते हैं। शरीर में प्रवेश करने पर बहुत पीड़ी देते हैं। उसी प्रकार जैसे जातिवाद असमानता, आर्थिक पाखंड, अंधविश्वास नुकीले काँटे हैं, जो भारतीय समाज को पीड़ा पहुँचाते हैं। इन सबसे छुटकारा तेज ज्ञान रूपी औजारों से हो सकता है और यह तेज औजार सोनकर जी की कलम है। यह कलम तलवार से भी ज्यादा पैनी धारधार है जो अमानवीय व्यवहार करनेवालों को अपनी भाषा की शक्ति से ध्वस्त कर देती है। जिस प्रकार नागफनी के काँटा को निकाले बिना चैन नहीं पड़ता उसी प्रकार जब तक समाज से समरसता का अभाव और गैर बराबरी है तब तक एक सर्वजन समाज का निर्माण नहीं हो सकेगा। लेखक नागफनी शीर्षक के माध्यम से यही बात कह रहा है।

नागफनी दलित समाज को अंधविश्वास,पाखंडता से बाहर निकालने में एक बहुत ही क्रांतिकारी भूमिका अदा करने जा रही है। सदियों से पीड़ित समाज अज्ञानता के कारण डरा हुआ है। एक प्रसंग में लेखक से शिवभजन जबरन अपने मंदिर की पुताई करवाता है। लेखक अपनी जान की परवाह न करते हुए रस्सी से लटककर मंदिर के ऊपरी भाग की सफाई व पुताई कर देता है। अपने मित्रों के अनुरोध पर अखंड पाठ में भाग लेता है। शिवभजन लेखक को अखंड पाठ में बैठा देखकर आग बबूला हो जाता है। " इस अछूत को रामचरितमास की चौपाई पढ़ने का कोई अधिकार नहीं है, यह अखंड पाठ खंडित हो जायेगा।"[135]और लेखक को वहाँ से अपमानित करके भगा देता है।

****

निलज वनिता का सांस्कृतिक भौतिकवाद

अमर सिंह (शोधार्थी)
डॉ. सीमा चन्द्रन (शोध-निर्देशक)

सहायक आचार्य
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय
तेजस्विनी हिल्स, कासरगोड-671325
seemachandran@cukerala.ac.in
Mob-9447720229

प्रस्तावना-क्या संसार भर में जितने भी मानवीय, वातावर्णीय, मानवभौतिकीय क्रियाकलाप हो रहे या किए-कराए जा रहे हैं जिनमें अपराध, अनीति, कुकर्म, दुराचार, अहं, अविधिता आदि सम्मिलित हैं क्या वे सब परिष्कृत, परिशुद्ध और नियमावृत हैं? यदि हाँ तो ठीक है। यदि न, तो आप ये मानिये कि जब ये सभी मानवीय कृतिकताएँ परिष्कृत नहीं हैं, तब भला उन्हें शुद्ध परिष्कृत भाषा व पाठ-दार्शनिकीय वातावरण में कैसे अभिव्यक्त व संप्रेषित किया जा सकता है? संसार में अब तक जब से हम सचेत हुए हैं तब से हम से अधिक सचेत लोगों ने मानवीयता को समाज के बड़े ठेकेदारों ने चाहे वे सनातनवादी हों, बुद्धवादी हों चाहे मुगल, सामंत, उपनिवेशी आदि हों, सभी ने समाज को कई नई और अविश्वानीय तथा बलपूर्वक नई अविधिक दशाएँ और दिशाएँ दीं हैं। यह मात्र कुछ धन और यश प्राप्ति के लिए अधिक से अधिक हुआ है। इतिहास को तो परिष्कृत करा कर नवीन रूप दे दिया गया। लेकिन आज सामयिक सामाजिक बोधपरक युग ने इतिहास-परिष्कृतिकरणीयता को धर दबोचा और इस हर बात को हर विषय को एक शंका की दृष्टि से देखने की परिकल्पना ने वास्तविकताओं को बाहर फेंकने का काम प्रारम्भ कर दिया।

प्रस्तुत सुलभ सांसारिक हाव-भाव और रंगबाजी सबसे अधिक साहित्य में देखने को मिलती है। हालाँकि ऐसा नहीं है कि अन्य विषयानुशासनों में यह सब नहीं देखने में आता। यह सारे मानव-प्राणी विषयों में देखने में आता है। साथ ही वह चाहे किसी पत्र, पात्र के द्वारा हो अथवा किसी समाज, साहित्य आलोचक के मुखारविंद व लेखन से या के द्वारा। इसका मुख्य कारण खासा साहित्य और सामाजिकी में आई नवीन आलोचना सिद्धांतकियाँ हैं। सिद्धांतिकियाँ चाहे वह मार्क्सवादी हो, चाहे विखंडनवादी हो, नव्य इतिहासवादी हो, चाहे सांस्कृतिक भौतिकवादी हो और चाहे सांस्कृतिक साहित्य ही हो। इन सारी सिद्धांतकियों ने अपने-अपने रूप में एक ही समान बात के भिन्न-भिन्न अर्थचित्रव्याकरण और मान्यताएँ देने प्रारम्भ किए हैं। जैसा कि होना भी चाहिए था। इसी रूप में एक विषय जो आज गंभीर समस्या बनता जा रहा है। वह है - स्त्री विमर्श। यदि इस विमर्श को सांस्कृतिक भौतिकवादी सिद्धांतिकी से खोलकर देखा जाय तो? जैसा सांस्कृतिक भौतिकवाद के बारे में सुधीश पचौरी ने कहा है कि *''हर सांस्कृतिक 'कृति' (टेक्स्ट) का ऐतिहासिक संदर्भ होता है। इस तरह हर कृति खास परिस्थिति की पैदाइश होती है। इतना ही नहीं, हर कृति का एक कृतिगत इतिहास होता है। जिनसे उसकी कृतीयता या पाठीयता बनती है। इसके अलावा हर कृति के कृतिगत इतिहास और उसके इतिहास के 'पाठीयकरण' को देखना समझना होता है और इस तरह कृति को अनुशासनों के आर-पार जाकर उसके उन विमर्शों को पढ़ना होता है जो कृति से गुज़र कर जाते हैं। इसीलिए सांस्कृतिक भौतिकतावादी अध्ययन के लिए यह ज़रूरी है कि वह कृति में सक्रिय 'सत्ता' के प्रश्नों पर ध्यान*

दें और हाशिये पर डाल दिये गए समूहों (जैसे मज़दूर वर्ग, महिला वर्ग व समलैंगिक) को फोकस कर सके।''[1]

यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि जिस प्रकार मज़दूर वर्ग पर ध्यान दिया जाय या अन्य पर ठीक वैसे ही समाज में जो अन्य में हैं चाहे वह व्यापारी वर्ग हो या कोई अन्य समाज संदर्भ, समाज के उस संदर्भ पर भी फोक्स किया जाना चाहिए? अब यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि 'सांस्कृतिक' का अर्थ संस्कृतिक से भिन्न है। सांस्कृतिक का अर्थ होता है किसी व्यक्ति के चरित्र के दर्शन के सौन्दर्य के आयाम जिसमें निहित हों जैसे संरचना और भौतिकता, कला आदि उस बिम्बार्थ वातावरण को सांस्कृतिक कहा जाता है। संस्कृतिक अर्थात् किसी समूह या समाज के व्यक्तित्व के दर्शन के सौन्दर्य के आयाम जिसमें निहित हो जैसे होली, दीवाली आदि। इसे और अधिक गहरे समझने के लिए एक उदाहरण और पचौरी जी की पुस्तक से लेते हैं। वे कहते हैं कि ''कहने की आवश्यकता नहीं सांस्कृतिक भौतिकवादी नज़रिया सचेत रूप से 'राजनीतिक' है। वह 'व्याख्या की राजनीति' को महत्व देता है वह मानता है कि हर व्याख्या 'राजनीतिक' होती है और इसीलिए वह ऐसे 'पठन' पर बल देता है जो शोषितों, दमितों और हाशियाकृतों पर न केवल ध्यान दें बल्कि टेक्स्ट या कृति और उसकी व्याख्या में प्रतिरोध व भीतरघात की संभावनाओं पर ध्यान दें। सांस्कृतिक भौतिकवाद टेक्स्ट या कृति के विरोधी पाठ की जरूरतों पर ध्यान देता है ताकि कृति में निहित सत्ता की प्रतीकात्मक संरचना में कतव्योंत (टिंकर) की जा सके।''[2] वैसे तो यह बहुत ही सूक्ष्म पद्धति है लेकिन इसे उतनी ही सरलता से समझा भी जा सकता है। हालांकि ध्यान रहे कि 'सांस्कृतिक' शब्द 'कल्चर' शब्द का पर्याय नहीं है। 'कल्चर' शब्द के लिए 'संस्कृतिक' शब्द का प्रयोग होता है। साथ ही यह भी कि यह मोर्विश हैरिश के 'कल्चर मटेरियल' की अर्थवृत्ति से बड़ा है। इसलिए सुधीश पचौरी के उपरोक्त कथनार्थ से थोड़ा बाहर भी रहेगा।

स्त्री-विमर्श का संविधान की ओर अपना रुख करते हुए जाना बराबरी के हक़ में कहीं न कहीं आरक्षण माग लेना है। जिसे कई स्त्रियाँ पसंद नहीं करतीं। वे क्षमता के बल पर स्थान मिलने के इच्छुक हैं न कि आरक्षण के। कुछ पुरुष वर्ग भी यही सोच रखते हैं। यह बात महान समाजशास्त्री 'आनंद कुमार' और महिला एवं बाल-विकास मंत्री 'रेणुका चौधरी' भी; उद्धरणरत रेखा कस्तवार जी की पुस्तक 'अपने होने का अर्थ' में कहतीं मिलीं। पुस्तक-पाठ में उद्धत है कि ''शेर हो गयी स्त्री'' सामाजिक संक्रांति का सबसे जलता सवाल है। कानून के स्त्री के प्रति संवेदनशील होने पर अपने अधिकारों के प्रति जागतीं औरतों से व्यवस्था आतंकित है। कल से स्त्रियाँ 'वैधानिक आतंकवाद' फैलाने में सफल होंगी। न्यायविदों की चिंता गहरी है। स्त्रियाँ भेंडिया आया, भेंडिया आया चिल्ला रहीं हैं, कल जब सच में भेंडिया आ जाएगा तो स्त्री को मदद के हाथ नहीं मिलेंगें अर्थात् स्त्री झूठी शिकायतें कर रही हैं। कानून के इस दुरुप्रयोग के खिलाफ किसी सजा का प्रावधान भी नहीं। कहा यह भी जाता रहा है कि अब तो पुरुष प्रताड़ित है, घरेलू हिंसा के खिलाफ आने वाली शिकायतों में 13-14 प्रतिशत हिस्सा प्रताड़ित पुरुषों का है। समाजशास्त्री आनंद कुमार राय कहते हैं कि दुरुपयोग की गुंजाइश खत्म नहीं हुयी तो उपलब्धियां बेमानी हो जाएंगी। इसलिए सबकी सुनवायी हो, सबको न्याय मिले ऐसी मंशा रेणुका चौधरी जी (मंत्री महिला एवं बाल-विकास) ने व्यक्त की हैं।''[3] यहाँ न्याय की आवश्यकता इसलिए है कि स्त्री-विमर्श निगमों की देन है। वह निगमवादियों की एक व्यापारिक चाल है जैसे कि राजनीति मर्मज्ञ सतीश कुमार कहते हैं कि ''अंग्रेजों के समय में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के उपाय किए गए''[4] साफ स्पष्ट होता है कि यह भूमिका उसी समय यानी हाल्फ जागरण से ही प्रारम्भ की गई थी। हाल्फ जागरण यानी आधी बातें बताना और आधी छुपा लेना। कुछ ज्ञानी-सरोकारियों का मानना है कि यह काम सिमरन बुवा से या एक स्वीडिश महिला के काम-शिक्षा देने के लगभग 1896 के आस-पास से माना जाता है कि इन्होंने प्रारम्भ किया। लेकिन यह अर्ध-सत्य है। आशारानी व्होरा जी कहती हैं कि ''प्राचीनकाल की अधिकार सम्पन्न नारी मध्यकाल के बाद 19वीं शताब्दी तक आते-आते पूरी तरह अधिकारविहीन व पर-निर्भर हो चुकी थी।''[5] आलोचक सुधीश पचौरी कुमकुम संगारी के हवाले से कहलवाते हैं कि ''कुमकुम संगारी बताती हैं किस तरह अंग्रेज़ ओरियंटलिस्टों ने भाषा और साहित्य के शिक्षण को नियंत्रित किया और किस तरह भारतीय स्थानीय एलीट की जरूरतों से उसे मेल में रखा ताकि अनुकूलन में परेशानी न हो''[6]. वे कई नियमों से चल रहे थे। उन्हीं नियमों में यह भी एक नियम छिपा था। जिसे समझना समय के साथ कठिन हुआ। जो यहाँ आज पकड़ में आया है। हाल-फिलहाल आने वाले समय में पूँजीवादी राष्ट्र जब इधर ध्यान देंगे, सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि जल्द ही यह पागलपन समाप्त हो जाएगा। राजकिशोर जी लिखते हैं कि ''जिन्हें भ्रम है कि सामंतवाद या पूंजीवाद ने स्त्री की यह दुर्दशा की है, उन्हें साम्यवादी देशों में स्त्री की हालत पर गौर करना चाहिए। है।''20 इस बात से साफ स्पष्ट होता है कि जिस समय सम्पूर्ण विश्व एक पूँजीवादिता के रूप में बहाल हुआ, उस दिन इनका खेल समाप्त हो जाएगा।

अब हम पचौरी जी पुनः पंक्ति बदलते हैं और लिखते हैं कि ''रीतिकाल में हमारे यहाँ भी ऐसी ही नायिकाएँ रहीं। लेकिन उन्हें क्रमिक तरीके से पराजित कर दिया गया।''[7]. लेकिन बाद में सुधीश पचौरी जी उन्हीं स्त्रियों को सशक्तिकरण और विमर्श से जोड़ देते हैं। जबकि वे यह अच्छे से जानते हैं कि विमर्श की स्त्री का निर्माण एक प्रतियोगिक अपने रूप में अपने लाभ के लिए मिशनरियों, उपनिवेशियों, निगमवादियों ने 'हाल्फ जागरण' के माध्यम से निर्मित किया था, जो आज एक विमर्श का रूप ले बैठी हैं। ''यद्यपि अंग्रेजों ने इस देश में नयी अर्थव्यवस्था, औद्यौगिकता, संचार-सुविधा, प्रेस आदि को अपने निजी स्वार्थ के लिए स्थापित किया, फिर भी इससे भारत का हित हुआ।''[8]. इससे साफ स्पष्ट होता है कि इन निगमवादियों ने 'हाल्फ जागरण' के माध्यम से कुछ ऐसी स्थापनाएँ कीं। जिनसे वे समाज के अंदर भी अधिकाधिक निगमन कर सकें। क्योंकि किसी न किसी प्रकार वे पुरुषवर्ग से तो धन निगमित कर ही रहे थे, साथ ही महिलाओं से भी किस प्रकार से उन्हें एक व्यवस्था में लाया जाय और विशेष स्तर पर उन्हें भी निगम का कलपुर्जा बनाया जाय। यह निगमवादियों की एक चाल थी। जिसे महिलाएँ न समझ सकी। क्योंकि महिलाएँ अनुकूलन ढूँढ़तीं थीं। ये वहीं महिलाएं थीं जिनके पति या तो इनके किसी गलत लत या काम के कारण इन्हें छोड़ दिया करते थे अथवा कभी जिनकी अकाल मृत्यु हो जाती थी अथवा किसी दूसरी महिला के त्रिया-चरित्र में जा फँसते थे। ऐसी महिलाएँ पूरे विश्व में थीं। निगमवादियों के 'हाल्फ जागरण' और समाज में बाज़ार की परख व बाज़ार-व्याकरण को समझते हुए जहाँ-जहाँ इन लोगों ने अपना जाल फैलाया और अनुकूलन दिया वहाँ-वहाँ महिला सशक्तिकरण परिवेश बनाने लगे। उपनिवेशवादियों का यह मानना था कि यदि ये सशक्त होकर धन कमाएँगी और विकास के बारे में सोचेंगी तब वे बाज़ार में आएँगी और बाज़ार पर हमारा राज तो है ही। यह उनकी एक चाल-नीति थी। जिसमें पूरे विश्व की महिलाएँ फँसी हैं व औरों को भी साथ में फँसा रही हैं।

वास्तविका में शिक्षा, जीवन में सुधार की सीमा तक ही रखा गया था, ताकि समाज में पुरुष और स्त्री के मध्य मृत्यु-लक्ष्य तक 'अनुकूलन' बना रहे, विद्रोह नहीं। विद्रोह करना तो इन्हें सिखाया गया

अपने स्वार्थ के लिए और इस काम का प्रारम्भ विश्व भर में निगमवादियों ने किया था। विश्व की सारी महिलाएँ जो उच्छवत थीं वे 'अनुकूलन का पाठ' जानती थीं। महिलाओं के प्रति यह ज्ञानावृत्ति प्राचीन समय से विद्यमान थी। पर सीमा भर, ऐसे ही ताकि जीवन को वे समझ सकें तथा समाज में वे विशेष संतुलन बना सकें। वैसे यह 'अनुकूलन का पाठ' भारत में भी पहले से ही विद्यमान थी। यदि स्त्री का निर्लज्ज होना ही यदि सबसे बड़ा एमपवारमेंट है, तब पुरुष वर्ग से क्या छींना जा रहा है? पुरुष से अंदरूनी रूप में ये उनके अधिकार-स्वाधिकार के रूप में हड़प लेने की मंशा इनकी *'फैसले अब हमारे है'* पुस्तक से देखिये वे कहती हैं कि *''इसीलिए औरत के लिए सभी जायज़, नाजायज़ है और मर्द के लिए सारे नाजायज़, जायज़ है क्योंकि सत्ता उसी की है, सियासत उसी की है, संसद व कानून सबके सब उसके नियंत्रण में हैं।''*[9] आप देखेंगें कि ये महिलाएँ जो संविधान में अपनी स्थिति बनाने के लिए दम भर रही हैं जिनकी भूमिका ही बाज़ारी है, वे किस तरह पुरुष के कर्तव्य अपने नियंत्रण में लेने की चेष्टा में हैं। इस छींन-छोर के पीछे का व्याकरण क्या है? अतः वह कौन सा आधार रहा कि 'निर्लजियता' होने में इतनी बड़ी शक्ति मानी जाने लगी। सोचने की बात यह है कि यह सशक्तिकरण जो प्रत्येक स्त्री को स्त्री विमर्श की ओर खींचते हुए ले जा रहा है वह भी संविधान की ओर। कुछ चुनिन्दा महिलाओं के कारण जो एक स्वार्थ के कारण संसद की सदस्यता लेने के चक्कर में हैं अथवा किसी बड़े अंतर्राष्ट्रीय पदों पर पहुंचने की लालसा बनाए हुए हैं और उनके जाल में फँस रहीं हैं, वे स्त्रियाँ विमर्श और अपने जीवन का 'व' और 'ज' भी नहीं जानती।

'ग्रीन ब्लाट', 'हैडेन ह्वाइट' और सहमति 'सुधीश पचौरी' की लेते हुए कहें तो कह सकते हैं कि कोई भी इतिहास रेखीय नहीं होता, बल्कि कथित इतिहास में इतिहास को रेखीय बना देने की कमी होती है। यह उस समय का इतिहास है जो घटित हुआ है अथवा जिसमें इतिहास में अनुसंधान पद्धतियों कि कमी से हम वास्तविकताओं तक पहुँच नहीं सके हैं। एक बात और कभी-कभी जैसे भारत में 1800 ईसा के आस-पास कुछ गिने चुने लोग ही थे। जो 'ठीक-ठाक पढ़ना लिखना' जानते थे। लेकिन वे भी भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन में सक्रीय थे। वास्तविक इतिहास कौन लिखता? इतिहास छिपे पड़े रहे। इधर नव्य-इतिहासशास्त्रवादी पद्धति ने साहित्य और 'वास्तुजगत' के माध्यम से इतिहास के असतत में आने वाली बिंदुईताओं को खोलना प्रारम्भ किया। जिसमें नए-नए विषयों की पहचान हो, वे हमारे सामने खुलकर आ रहे हैं।

इस 'निलज वनिता' को हमने उसी तरह से जैसे 'सांस्कृतिक भौतिकवाद' जो 'मोर्विस हैरिस' के 'कल्चर मटेरियल' से थोड़ा ऊपर और भिन्न है के अनुसंधान पद्धति के माध्यम से समझा। यहाँ जब 'निलज वनिता' रीतिकाल में दिखी तो, क्योंकि सुधीश पचौरी जी ने रीतिकाल : सेक्सुआलिटी समारोह को एक विखंडन और फूको विचरण आलोचना पद्धति से समझा है। इस लिए यह हमें तभी समझ आएगा जब हम किसी अन्य सिद्धांतिकी के माध्यम से इसे समझेंगे अन्यथा नहीं। यह बात स्वयं वाणी प्रकशन के संपादक अरुण माहेश्वरी जी ने लिखी और कही है वे लिखते हैं कि *''यह किताब नव्य-इतिहासवादी, उत्तर-आधुनिकतावादी, उत्तर-संरचनावादी, संस्कृतिक भौतिकवादी नजरिए से हिन्दी साहित्य के नैतिकतावादी दरोगाओं द्वारा रीतिकाल की इन चिर निंदित स्त्रियों के सम्मान को बहाल करती है, रीतिकाल के कुपठियों की वैचारिक राजनीति को सप्रमाण ध्वस्त करती है और रीतिकाल को नए सिरे से पढ़ने के लिए विवश करती है।''*[10]. हालांकि वे लेखक के अधीन बात कर गए लेकिन वास्तविकता वे न पहचान सके कि रीतिकाल के बाद उन महिलाओं के साथ क्या हुआ और वे क्या होकर क्या कर रहीं हैं। इस लिए मैंने इसे सांस्कृतिक भौतिकवादी सिद्धांतिकी से समझा है। हम निलज वनिता को आज शंका की दृष्टि से क्यों देखने लगे हैं इसका कारण आप सुधीश पचौरी के शब्दों के माध्यम से समझिए *''यह भूमंडलीय समय है। मनुष्य एक साथ ही विश्व नागरिक है और स्थानीय हैं। अपने समाज में मौजूद उपद्रव बहुत कुछ आधुनिक और उत्तर-आधुनिक की टकराहटों का नातीजा है। इसलिए यह टिहरी गाँठ है जो खुल रही है। आधुनिकीकरण की योजना अपने यहाँ अंग्रेजों के जामने में शुरू हुई थी जिसे आजादी के बाद अखिल भारतीय स्तर पर लागू किया गया। उसके सामने स्वयं अपनी प्रकृति को पहचानने की चुनौती उठ खड़ी हुई है।''*[11]. आज हम विश्व नागरिकता को समझते हैं और उनकी चाल को भी इस लिए हम गाँठों से टकराने की चाप मोल ले रहे हैं औए हमारे साथ है उत्तर-आधुनिकता की व्याकरण व बहस ! जहाँ हर 'चाल' और हर 'नीति' एक विज्ञापन है। जिनके पीछे ऊंचे दर्जे का काम करती है निगम या व व्यापार कला !

****

संदर्भ ग्रंथ-सूची -

1. नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, पृ. 461
2. नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, पृ. 461
3. अपने होने का अर्थ, रेखा कस्तवार, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2012, पृ. 99
4. महिला सशक्तिकरण, सतीश कुमार, THE WOMEN PRESS, NEW DELHI, FRIST PUBLISHED – 2016
5. . औरत कल, आज और कल, आशारानी व्होरा, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण – 2011, पृ. 5
6. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 25
7. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 9
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ नगेन्द्र, डॉ हृदयाल, प्रकाशन मयूर बुक्स, नई दिल्ली, 62 वाँ संस्करण – 2018, पृ. 413
9. फैसले अब हमारे हैं, रंजना श्रीवास्तव, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृ. 126
10. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, आवरण पृष्ठ बाईं ओर
11. आलोचना से आगे, सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2006, पृ. 7